International Journal of Sanskrit Research 2021; 7(4): 55-61

International Journal of Sanskrit Research

अनन्ता

ISSN: 2394-7519
IJSR 2021; 7(4): 55-61
© 2021 IJSR
www.anantaajournal.com
Received: 13-05-2021
Accepted: 24-06-2021

विवेक कुमार शुक्ल
शोधार्थी, संस्कृत एवं
प्राच्यविद्या अध्ययन संस्थान,
जवाहरलाल नेहरू
विश्वविद्यालय, दिल्ली, भारत

Corresponding Author:
विवेक कुमार शुक्ल
शोधार्थी, संस्कृत एवं
प्राच्यविद्या अध्ययन संस्थान,
जवाहरलाल नेहरू
विश्वविद्यालय, दिल्ली, भारत

भारतीय सांस्कृतिक वैशिष्ट्य के विविध आयाम

विवेक कुमार शुक्ल

प्रस्तावना

संस्कृत साहित्य का प्रभाव देश विदेश में सर्वत्र दृष्टिगोचर होता है। इसमें निहित काव्य से जो विश्रान्ति मिलती है, वह परमानन्द की अनुभूति कराती है। इसके प्रचार प्रसार करने से और अनुसन्धान से विश्वशान्ति का स्थायी परिणाम निकालने का अत्युत्तम मार्ग है। विश्वबन्धुत्व, राष्ट्रवाद, धर्म-दर्शन, इतिहास, आयुर्वेद, शिल्प, कला, युद्धविद्या आदि का वर्णन संस्कृत शास्त्रों से ही आया है। सम्पूर्ण ज्ञान परम्परा की वाहिका संस्कृत विद्या है। क्योंकि जब भी किसी भी प्राकृतिक आपदा या अशान्ति का उपक्रम होता है, तो उसके निवारणार्थ हम जब शास्त्रों की तरफ उन्मुख होते हैं, तो संस्कृत में ही उन सब विघ्नों का स्थायी हल प्राप्त होता है। जब हमारे सामने यह प्रश्न होता है कि, हम संस्कृत क्यों पढ़े? तब उसका यही उत्तर होता है कि किसी भी आधिदैविक, आधिभौतिक और वैश्विक समस्याओं का हल संस्कृत में ही है। शास्त्रों में योग, आयुर्वेद, भाषाविज्ञान, आयुधविज्ञान, ध्वनिविज्ञान, नाट्यविद्यादि का वर्णन है ।

किसी भी प्रकार की जिज्ञासा का शान्ति संस्कृत से ही सम्भव है अतः हमें संस्कृतसाहित्य का अध्ययन करना चाहिये । पृष्ठभूमि- भारत वर्ष का यह सुन्दर देश सदा से प्रकृति-नटी का रमणीय रंगस्थल बना हुआ है ।इसी भारत भूमि से ज्ञान का उद्भव हुआ है,ऐसा क्यों ? क्योंकि जब हम हमारे सामने प्रश्न होता है कि ज्ञान सम्पदा का विकास कहां से हुआ है ? तो उत्तर के रूप में हम पाते हैं, ऋग्वेद अतः इसे ललित कला तथा कमनीय कविता की जन्मभूमि मानना सर्वथा उचित है। अत्यन्त प्राचीन काल से चली आ रही भारतीय ज्ञान परम्परा में निहित अनेकानेक भाषाएं और उनमें निहित ज्ञान विज्ञान का भण्डार सर्वथा संस्कृत भाषा में ही परिपूरित दृष्टिगोचर होता है । इससे हमारी यह जिज्ञासा भी शान्त हो जाती है, हम संस्कृत क्यों पढें?

परिचय

संस्कृत साहित्य को प्रायः दो भागों में विभाजित किया जाता है- वैदिक साहित्य और लौकिक साहित्य। लौकिक संस्कृत में लोकजीवन और सामान्य जनता के संघर्ष और यथार्थ को बहुत ही सूक्ष्मता के साथ चित्रित किया गया है।

वस्तुतः प्रख्यात है कि साहित्य समाज का दर्पण होता है। अतएव तत्कालीन समाज को जानने के लिये इससे अधिक समर्थ और उपयुक्त साधन और कुछ नहीं हो सकता है। प्रत्येक व्यक्ति का यह दायित्व होना चाहिये कि वह अपने साहित्य से परिचित हो इससे विहीन व्यक्ति "पशु" की श्रेणी में आता है। इस सन्दर्भ में आचार्य भर्तृहरि की उक्ति द्रष्टव्य है -

"संगीतसाहित्यकलाविहीनः साक्षात पशुः पुच्छविषाणहीनः"[1]

अर्थात संगीत,साहित्य,कला के ज्ञान से रहित मनुष्य साक्षत बिना पूंछ वाले पशु के समान होते हैं। अतः इस प्रकार से साहित्य की उपयोगिता सिद्ध होती है । इस लौकिक साहित्य में रामायण, महाभारत, पुराण और काव्य, नाटक, गद्य, पद्म, कथा, आख्यायिका, चूर्णक, मुक्तक, आश्वास, कुड्बक आदि की रचना हुयी । संस्कृत साहित्य के प्रयोजन विशेष के सन्दर्भ में कहा गया है –

सर्वस्यैव हि शास्त्रस्य कर्मणो वापि कस्यचित् ।
यावत्प्रयोजनं नोक्तं तावत् तत् केन गृह्यते ॥

सुधीजन निष्प्रयोजन कुछ भी नहीं करते तो काव्यादि के लिये अवकाश कहां इस विषय मे कहा गया है कि - "प्रयोजनमनुद्दिश्य न मन्दोऽपि प्रवर्तते' (बिना किसी स्वार्थ के मूर्ख भी कोई काम नहीं करता।) इस सन्दर्भ में आगे इसकी प्रयोजनमूलकता का उल्लेख किया जा रहा है। भरतमुनि ने दृश्य काव्य के प्रयोजन के लिये लिखा है कि-

दुःखार्तानां श्रमार्तानां शोकार्तानां तपस्विनाम् ।
विश्रामजननं लोके नाट्यमेतद् भविष्यति ॥
धर्म्य यशस्यमायुष्यं हितं बुद्धि-विवर्धनम् ।
लोकोपदेशजननं नाट्यमेतद भविष्यति ॥[2]

कविताकामिनीविलास कविकुलगुरु कालिदास ने भी इस की फलवत्ता के महत्व को स्पष्ट किया है –

प्रवर्ततां प्रकृति हिताय पार्थिवः, सरस्वतीश्रुतिमहती न हीयताम् ।
ममापि चक्षपयतु नीललोहितः, पुनर्भवं परिगतशक्तिरात्मभूः॥[3]

[1]भर्तृहरि; नीति शतक

[2] भरतमुनि; नाट्यशास्त्र, प्रथम अध्याय

राजा प्रजा के हित के लिये यत्र करे ।सरस्वती का कोई परित्याग न करे और स्वयंभू शिव मेरे पुनर्जन्म को निवृत्त कर दें। इस प्रकार काव्य के महत्त्व को ऐसे भी कहा जा सकता है-

एवं संक्षेपतो वक्तुं शक्यते सारवान्मतम् ।
अभीष्टफलदं काव्य नूनं कल्पद्रुयते ॥

भारतीय संस्कृति में सन्निहित मानवीय वैशिष्ट्य -

वस्तुतः इसकी प्रसिद्धि ही इसके लिये है तथापि विषय प्रसङ्ग में विवेचन आवश्यक है। आदर्शों में आचार विचार व्यवाहर खान पान भाषा भूषा भेषज भोजन भजन आदि सब कुछ समाहित है । आचारण के विषय में कहा गया है कि **"रामादिवद्वर्तितव्यम् न रावणादिवत्"**[4] (राम के समान आचरण करना चाहिये, न कि रावण के समान) ऐसा निर्देश काव्यशास्त्र के द्वारा प्राप्त होता है। मानव मूल्यों के सम्बन्ध में बताया है कि व्यक्ति को किस प्रकार समाज मे अपना स्वत्व दिखता था जैसे कि –

मातृवत् परदारेषु परद्रव्येषु लोष्ठवत् ।
आत्मत् सर्वभूतेषु यः पश्यति स पण्डितः ॥[5]

(दूसरे की पत्नी या माता को अपनी माता के समान और दूसरे के धन को ढेले के समान मानने वाला सभी से आत्मवत व्यवहार करने वाला व्यक्ति ही पण्डित है) इस प्रकार से सज्जन लोग न केवल वहां के समाज को अपितु सम्पूर्ण विश्व में आदर्श एवं अमृतमयी पावनता का सन्देश देते रहे हैं-

"मनसि वचसि काये पुण्यपीयूषपूर्णाः, त्रिभुवनमुपकारश्रेणिभिः प्रीणयन्तः ।
परमगुणपरमाणून पर्वतीकृत्य नित्यं, निजहृदिविकसन्तः सन्ति सन्तः कियन्तः ॥[6]

(जिनकी देह मन और वचन की शुद्धता और पुण्य के अमृत से परिपूर्ण है और वह परोपकार से सभी का हृदय जीत लेते हैं। वह तो दूसरों के गुणों को बड़ा मानते हुए प्रसन्न होते हैं पर ऐसे सज्जन इस संसार में हैं ही कितने?) ज्ञान के महत्व

[3] कालिदास : अभिज्ञानशाकुंतलम्

[4] साहित्यदर्पण

[5] हितोपदेश मित्रलाभ

[6] श्रीमद्भागवतम्

पर प्रकाश डालते हुये प्रायः शास्त्रों में इसका महत्व बताया गया है।
इसके साथ साथ ज्ञानी पुरुषों को भी पूज्य बताया गया है जैसे कि – "स्वदेशे पूज्यते राजा विद्वान् सर्वत्र पूज्यते" इस प्रकार की भावना आज भी लोक में दिखाई देती है। जन सामान्य आज भी लिंग, जाति ,वय, आदि न देखकर ज्ञान को ही महत्व देते है - (न ज्ञानवृद्धेषु वयः समीक्ष्यते) क्योंकि संस्कृतसाहित्य में ज्ञान की युक्तता को मानवों में ही बताया गया है इससे रहित मानव पशु तुल्य हुआ करते है –

आहारनिद्राभयमैथुनञ्च सामान्यमेतत् पशुभिर्नराणाम्।
ज्ञानं हि तेषामधिकं विशेषो ज्ञानेन हीनाः पशुभिः समानाः ॥[7]

(भोजन, निद्रा, सम्भोग, आदि क्रिया कलाप मनुष्य और पशु दोनों में समान है, मनुष्य में ज्ञान की विशिष्टता है, ज्ञान रहित मनुष्य पशु के समान होते हैं)
अज्ञानता के सन्दर्भ में कहा कि यह समस्त विनाश की जड़ है जैसे कि भारवि के किरातार्जुनीय महाकाव्य में - "अविवेकः परमापदां पदम्"[8] या इस प्रकार कहा जाय कि "विवेकश्चष्टानां भवति विनिपातः शतमुखः"[9] इस प्रकार ज्ञान एवं उसकी उपयोगिता को लेकर संस्कृतसाहित्य सर्वथा परिपूर्ण है, सर्वत्र इस प्रकार की चर्चा प्राप्त होती है। इसके अतिरिक्त सामाजिक आदर्श जो मानवों में मानव के प्रति दिखाई देते है, यथा भास ने अपने नाटक स्वप्नवासवदत्तम् में बताया है कि तपस्वी मनस्वी से किस प्रकार वाक् व्यवहार करना चाहिये- " परिहरतु भवान नृपापवादं, न परुषमाश्रमवासिषु प्रयोज्यम्"[10] और तत्कालीन राजा भी तपस्वियों एवं अपनी प्रजा का पालन आदर्श नियमानुरूप करते थे ,उनके ऊपर कठोर शासन नहीं होता था, उनकी आवश्यकताएं जानकर उनकी पूर्त्ति की जाती थी-

कस्यार्थः कलशेन, को मृगयते वासो, यथा निश्चितं
दीक्षां पारितवान् किमिच्छति पुनर्देयं गुरोर्यद् भवेत्।
आत्मानुग्रहमिच्छतीह नृपजा धर्माभिरामप्रिया
यद्यस्यास्ति समीप्सितं वदतु तत कस्याद्य किं दीयताम् ॥[11]

न केवल राजा अपितु प्रजा जन भी अपने कर्त्तव्यों का पालन करते थे। तपस्वी आदि अपने तप का छठा भाग राजा को दान करते थे- 'तपः षड्भागमक्षय्यं ददत्यारण्यवासिनः'[12] इस प्रकार साहित्य में मानव मूल्यों का निरूपण किया गया है। आज के परिप्रेक्ष्य में जो प्रेम है तब वैसा नहीं था, उस समय का प्रेम आदर्शों से उत्प्रेरित था ,जब राजा दुष्यन्त शकुन्तला को पकड़ते हैं, तो वह कहती है कि शिष्टाचार की रक्षा कीजिये- " पौरव ? रक्ष रक्ष विनयम। इतस्ततः ऋषयः सञ्चरन्ति" इस प्रकार के आदर्श जनसामान्य से लेकर आश्रमवासियों में भी अन्तर्निहित थे।
कुटुम्ब के परिप्रेक्ष्य में वाल्मीकी रामायण में जो भार्तृस्नेह बताया गया है वह अनुपम है-

देशे-देशे कलत्राणि देशे-देशे तु बान्धवाः।
तं तु देश न पश्यामि यत्र भ्राता सहोदरः॥[13]

इस प्रकार मातृ, पितृ, प्रजा आदि के प्रति वाल्मिकि ने मर्यादामूर्त्ति श्रीराम के सहस्त्रों उदाहरण प्रस्तुत किये हैं।कुछ ऐसा ही भवभूति ने उत्तररामचरितम् में बताया है कि प्रभु श्रीराम को अपने कुटुम्ब से अधिक प्रजारूपी संतान से स्नेह था। जिसके लिये वह पूर्णतः समर्पित थे –

स्नेहं दयां च सौख्यं च यदि वा जानकीमपि।
आराधनाय लोकानां मुञ्चतो नास्ति मे व्यथा ॥[14]

लोकानुरञ्जन के लिये स्नेह, दया, सुख, और सीता का भी परित्याग करते हुये मुझे कोई व्यथा नहीं होती है और पशु पक्षियों की सेवा एवं उनके प्रति मानवीयता का आदर्श भी बहुलता के साथ दिखाई पड़ता है ,जैसेकि जटायु का मानव-प्रेम और राम के द्वारा उसका संस्कार किया जाना इसका द्योतक है।
कालिदास के विश्वप्रसिद्ध नाटक अभिज्ञानशाकुन्तलम् में "राजा दुष्यन्त के द्वारा पीछा किये जाते हुये मृग का वध न करें" ऐसा निर्देश आश्रमस्थ शिष्यों के द्वारा दिया जाता है - *"भो भो राजन ! आश्रममृगोऽयं न हन्तव्यो, न हन्तव्यः"* (राजन् यह आश्रम का मृग है इसे नहीं मारना चाहिये)। यह पशुओं के प्रति मानवोचित व्यवहार का सूचक है। इसी प्रकार शकुन्तला द्वारा पालित शिशुमृग का उदाहरण है, जिसकी सेवा शकुन्तला ने अपने पुत्रसदृश की है, वह भी

[7] हितोपदेश नीतिसंग्रह-मित्रलाभः
[8] भारवि : किरातार्जुनीयम् **2.30**
[9] नीतिशतकम्
[10] भास: स्वप्नवासवदत्ता
[11] भास : स्वप्नवासवदत्ता
[12] कालिदास : अभिज्ञानशाकुन्तलम्
[13] वाल्मीकिरामायणम्
[14] भवभूति : उत्तररामचरितम्

शकुन्तला के श्वशुरालगमन-समय में अपने पुत्रत्वभाव को प्रदर्शित करता है। कालिदास इन दोनों के अनन्य स्नेह के विषय में लिखते हैं -

यस्य त्वया व्रणविरोपणमिङ्गुदीनां
तैलं न्यषिच्यत मुखे कुश सूचिविद्धे ।
श्यामाकमुष्टिपरिवर्द्धितको जहाति
सोऽयं न पुत्रकृतकः पदवीं मृगस्ते ॥[15]

(कुश के अग्र भाग से घायल मुख में आपके द्वारा इगुंदी का तेल लगाया जाता था, चावल(सावां) की मुद्ठियों को देकर पाला हया यह कृत्रिम पुत्र आपका रास्ता नहीं छोड़ रहा है) सम्पूर्ण संस्कृतसाहित्य प्राणिमात्र के लिये ही नहीं, अपितु चराचर विश्व के लिये आदर्शो से भरा पड़ा है।

भारतीय सांस्कृतिक जीवनवैशिष्ट्य –

संस्कृतसाहित्य के उत्कर्ष काल में जन जीवन का भी उत्कर्ष रहा है उस समय व्यक्ति की जीवन दृष्टि व्यक्तिगत नहीं होती थी, अपितु सामाजिक होती थी -

अयं निजः परोवेति गणनालघुचेतसाम् ।
उदारचरितानां तु वसुधैव कुटुम्बकम् ॥[16]

सम्प्रति आधुनिक समाज के व्यक्तियों में अपने परिवार के प्रति और समाज के प्रति स्नेह शून्यता दिखाई देती है, इन्हीं कारणों से वृद्ध माता पिता को परिवार का आश्रय न प्राप्त होकर (ओल्ड हाउस) वृद्धाश्रमों में निवास करना पड़ता है। इतना ही नहीं अपितु आज के परिप्रेक्ष्य में व्यक्ति अपने व्यक्तिगत लाभ और स्नेह शून्यता के कारण अपने बच्चों को भी अपने पास नहीं रखते उन्हें (क्रेच) पालना घर में छोड़ देते हैं, कालिदास कहते हैं कि राजा दुष्यन्त भरत को गोद में उठाकर सोचते हैं-

अङ्काश्रयप्रणयिनस्तनयान वहन्तो
धन्यास्तदङ्गजसा मलिनी भवन्ति ॥[17]

(गोद में रहने के इच्छुक पुत्रों को धारण करते हुये भाग्यवान लोग ही उन (बच्चों) के अंग में लगी धूल से मलिन होते हैं ।) तत्कालीन राजा प्रजा के प्रति, समाज के प्रति, पिता के दायित्वों का निर्वहन करते थे। जैसा संस्कृत काव्यों में निर्दिष्ट है -

प्रजानां विनयाधानाद्रक्षणाद्भरणादपि ।
स पिता पितरस्तासां केवलं जन्महेतवः ॥[18]

प्राचीन समय में न केवल नगरीय जीवनदृष्टि इतनी उदात्त थी अपितु तपस्वी भी समाज के प्रति चिन्तित रहते थे। अभिज्ञान शाकुन्तल मे शकुन्तला की विदाई के समय महर्षि कण्व कहते हैं –

यास्यत्यद्य शकुन्तलेति हृदयं संस्पृष्टमुत्कण्ठया
कण्ठः स्तम्भितबाष्पवृत्तिकलुषश्चिन्ताजडं दर्शनम् ।
वैक्लव्यं मम तावदीदृशमपि स्नेहादरण्यौकसः
पीड्यन्ते गृहिणः कथं न तनयाविद्लेषदुःखैर्नवैः ॥[19]

आज शकुन्तला जाएगी, इस कारण मेरा हृदय आवेग से आक्रान्त हो रहा है। आंसुओं के कारण गला भर गया है , दृष्टि चिन्ता के कारण निश्चेष्ट हो रही है । वन में रहने वाले मुझको भी (पुत्री के प्रति) स्नेह के कारण ऐसी बेचैनी हो रही है, तो फिर गृहस्थ लोग पुत्री के वियोग के नये दुःख से क्यों नहीं दुःखी होते होंगे? अतः सम्पूर्ण समाज को ऐसे अवसरों पर कष्ट अनुभूत होता है इस प्रकार से हमें ऐसी उदात्त जीवन दृष्टि अपने काव्यों में दिखाई पड़ती है।

भारतीय सांस्कृतिक परिप्रेक्ष्य में नारी चेतना-

लौकिक साहित्य काल में ही नहीं, अपितु वैदिक काल में भी अपाला, घोषा, गार्गी, आदि का वर्णन इसका प्रमाण सिद्ध करता है । मनुस्मृति में उल्लिखित है कि जहां पर नारियों का सम्मान होता है, वहां पर सभी प्रकार के साधन-सम्पत्ति और यहां तक देवताओं का निवास भी माना गया है- "यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवता:"[20]

इस प्रकार कालिदास ने भी शकुन्तला को अखण्डपुण्य का फल बताया है यह समाज में स्त्रियों की सामाजिक चेतना का द्योतक है – "अखण्डं पुण्यानां फलमिव च तद्रूपमनघम्" इतना ही नहीं आश्रम में कुलपति कण्व की अनुपस्थिति में सर्वाधिकार शकुन्तला के पास सुरक्षित होते थे, वह आश्रम का संचालन करने में दक्ष थी।

[15] कालिदास : अभिज्ञानशाकुंतलम्
[16] विष्णुशर्मा : पंचतन्त्र
[17] कालिदास : अभिज्ञानशाकुंतलम्
[18] कालदास : रघुवंशमहाकाव्यम्
[19] कालिदास :अभिज्ञानशाकुंतलम्
[20] मनुस्मृति

भास के नाटक "वासवदत्ता" में वासवदत्ता का सङ्गीत शिक्षण यह द्योतित करता है कि तब स्त्रियों को सभी विषयों का ज्ञान हुआ करता था। इसी प्रकार वाल्मीकि रामायण में कैकई के युद्ध का वर्णन भी उनकी शौर्य गाथा के प्रतीक थे । तत्कालीन समय में धर्मशास्त्रीय कर्म भी बिना स्त्रियों के सम्पादित नहीं होते थे । श्रीराम द्वारा सीता की स्वर्णमयी प्रतिकृति बनाना इसका उदाहरण है । यहां तक पत्नी के बिना घर को घर की संज्ञा भी नहीं दी जा सकती थी – 'न गृहं गृहमित्याहुः गृहिणी गृहमुच्यते' (घर को घर नहीं कहते हैं,अपितु पत्नी को घर कहते हैं ।)

ध्यातव्य है कि पतिव्रताओं के आंसू धरती पर कभी व्यर्थ नहीं गिरते हैं- "पतिव्रतानां नाश्रूणि वृथा पतन्ति भूतले ।"[21] यह कथन उनकी सामाजिक दशा को बतलाता है। स्त्रियां किसी भी रूप में पुरुषों से पीछे नहीं थी । सीता वनवास के समय राम के साथ जाना चाहती हैं, राम उन्हें वन की भीषणता से डराते हैं। सीता उत्साह के साथ कहती हैं – "त्वया सह गमिष्यामि मृदनन्ति कुशकण्टकान्" तब भी राम नहीं मानते हैं, तो वे राम के पौरुष पर प्रहार करती हैं- "प्रणयाज्चाभिमानाच्च परिचिक्षेप राघवम्" इस प्रकार वे राम से अपने अधिकारों को ले लेती हैं और साथ में वन गमन करती हैं ।

भारतीय नारी की तेजस्विता और तपोवृत्ति का अनुपम उदाहरण सीता के चरित्र के द्वारा वाल्मीकि ने स्थापित किया है । इस प्रकार से सम्पूर्ण संस्कृत साहित्य आख्यानों उपाख्यानों से भरा पड़ा है । नारियों के क्या अधिकार थे उनकी जीवन शैली क्या थी, इसके अनुपम और उदात्त उदाहरण संस्कृत काव्यों के अतिरिक्त इतना सुष्पष्ट कहीं भी प्राप्त नहीं होते हैं ।

पर्यावरण चेतना-

पर्यावरण का शाब्दिक अर्थ हमारे चारों ओर के उस परिवेश से है, जहां सभी प्रकार के जीव जन्तु निवास करते हैं । यह पर्यावरण जीव जन्तुओं को प्रभावित करता है तथा स्वयं इनके क्रिया कलापों के द्वारा प्रभावित होता है । पर्यावरण एक व्यापक अवधारणा है जिसे काल या विषय की सीमा के अन्तर्गत बांधा नही जा सकता । पर्यावरण विज्ञान के सन्दर्भ में स्पष्ट उल्लेख हमारे प्राचीन ग्रन्थों में मिलता है, क्योंकि हमारे पूर्वज पर्यावरण को सन्तुलित बनाये रखने के लिये अनेक धार्मिक तथा धर्मनिरपेक्ष क्रियाकलापों का अनुष्ठित करते थे । इस सन्दर्भ मे महाकवि भास कृत एक उदाहरण द्रष्टव्य है –

विश्रब्धं हरिणाश्चरन्त्यचकिता देशागतप्रत्यया
वृक्षाः पुष्पफलैः समृद्धविटपाः सर्वे दयारक्षिताः।
भूयिष्ठ कपिलानि गोकुलधनान्यक्षेत्रवत्यो दिशो
निःसन्दिग्धमिदं तपोवनमयं धूमो हि बह्वाश्रयः ॥[22]

यहां निर्भय होकर हरिण चर रहे हैं, वृक्षों की डालियां पुष्प और फलों से लदी हुई हैं, कपिला गायें भी चर रहीं हैं, होम का धुआं भी निकल रहा है। यहां पर वनस्पतियों और फूलों-फलों से युक्त तथा वन में निर्भय हरिणों का चरना और हवन का धूम प्राकृतिक सुरम्यता को दर्शाता है। गीता में भी बताया गया है कि अन्न की उत्पत्ति वृष्टि से होती है, और वृष्टि-यज्ञ से होती है-

अन्नाद्भवन्ति भूतानि पर्जन्यादन्नसम्भवः ।
यज्ञाद्भति पर्जन्यो यज्ञः कर्मसमुद्भधवः ॥[23]

इस प्रकार के अनुष्ठानों से पर्यावरण को प्रदूषण मुक्त किया जाता था। अयोध्या में प्रतिदिन प्रदूषण निवारक होमादि सम्पन्न होते थे, उत्तररामचरित में पर्यावरणीय उत्कुष्टता के एक दृश्य की वर्णन कुछ इस प्रकार है -

आमञ्जुवञ्जुललतानि च तान्यमूनि
नीरन्ध्रनीलनिचुलानि सरित्तटानि ॥
मेघमालेव यश्चायमारादपि विभाव्यते
गिरिः प्रस्रवणासोअयं यत्र गोदावरी नदी॥[24]

इस प्रकार प्राकृतिक नदियां वन सम्पदाएं ही अधिक महत्व रखती थी तत्कालीन समाज में कालिदास ने वनलता को अधिक कान्तियुक्त बताया है उद्यान लता की अपेक्षा प्राकृतिक सम्पदाओं का महत्त्व अधिक होता है। कालिदास का कथन हैं-

उद्दीर्णदर्भववला मृगी परित्यक्त नर्तना मयूरी ।
अपसृतपाण्डुपत्रा मुञ्चन्त्यश्रूणीव लताः ॥[25]

जब शकुन्तला अपने पतिग्रह को जा रही थी, तो हरिण ने अपने मुंह से घास उगल दिया है, मोरनी ने नाचना छोड़

[21] वा.रा

[22] स्व. वा.द

[23] गीता

[24] उत्तरराम.च,

[25] कालिदास : अभिज्ञान शाकुंतल

दिया है, और ऐसा प्रतीत होता था कि लतायें पीले पत्ते गिराकर मानो आंसू बहा रहीं हो। आज जिस गति से अन्धाधुंध पर्यावरण को नुकसान पहुंचाया जा रहा है। अन्यत्र भी दण्डविधान हेतु कहा गया है-

प्ररोहशाखिनां शाखास्कन्धसर्वविदारणे ।
उपजीव्यद्रुमाणां च विंशतेर्द्विगुणो दमः॥

कोपलयुक्त डालों वाले वृक्षों की शाखा, तना या सम्पूर्ण वृक्ष काटने पर और जीविकोपयोगी (आम्र आदि) वृक्षों के इन भागों के काटने पर क्रमशः बीस, चालीस, अस्सी पण दण्ड होता है तथा विशेष वृक्षों पर दोगुना दण्डनिर्धारण सुनिश्चित किया गया है –

चैत्यश्मानसीमासु पुण्यस्थाने सुरालये। जातद्रुमाणां द्विगुणो दमो वृक्षे च विश्रुते ॥[26]

चतुष्पथ, श्मशान, सीमा, पवित्रस्थान, देवालय के वृक्षों के शाखादि काटने पर दुगुना दण्ड होता है। संस्कृत साहित्य में इस प्रकार की उत्कृष्ट पर्यावरण संचेतना दिखाई पड़ती है।

भारतीय सांस्कृतिक वैज्ञानिक वैशिष्ट्य

भारतवर्ष में विज्ञान का उद्भव अत्यन्त प्राचीन है। जिसका विकास संस्कृत भाषा के माध्यम से हुआ। इस संस्कृत वाङ्मय में ऐसे अनेकों ग्रन्थ तथा सन्दर्भ प्राप्त होते हैं ,जिनमें विज्ञान,जीवनादर्श,सामाजिक चेतना आदि के ज्वलन्त पक्षों के बहुविध स्वरूप का निदर्शन प्राप्त होता है । हमें संस्कृत को पूर्वजों की धरोहर मात्र ही नहीं, अपितु प्रगति पथ पर दिशा निर्देश करने वाली प्रेरक शक्ति के रूप में समझना चाहिये । उसमें संस्कृत- वाङ्मय के विज्ञानपरक समस्त ग्रन्थ, चाहे वे गणित, ज्योतिष, चिकित्साविज्ञान, जीवविज्ञान, रसायन विज्ञानादि किसी भी शाखा से अनुस्यूत हों, परन्तु यहां पर काव्य को लेकर प्रतिपादित किया जा रहा है।

कालिदास ने मेघदूत में मेघ के निर्माण की प्रक्रिया बता रहे हैं कि उसमें कौन-कौन से तत्व हैं- "धूमज्योतिः सलिलमरुतां सन्निपातः क्व मेघः" [27](धुआं, अग्नि, जल, और वायु का मिश्रण) उनके इस कथन से स्पष्ट होता है कि उन्हें रसायनशास्त्र का अच्छा ज्ञान था। मौसम विज्ञानवेत्तारूप में उनका ऋतुसंहार में षड्ऋतु वर्णन (ग्रीष्म, वर्षा, शरद, हेमन्त, शिशिर, वसन्त) अत्युत्तम है। ऋषि भी जानते थे कि वृक्ष, वनस्पतियां और औषधियां मानव की रक्षक हैं। इनमें वनस्पतियों के पांचों अंग (मूल, शाखा ,पत्ते, पुष्प, और फल) मानव के लिये उपयोगी है। बालकाण्ड से लेकर उत्तरकाण्ड तक सर्वत्र वनस्पतियों का वर्णन है ।

आम, जामुन, असन, लोध्र, प्रियाल, मधुपर्णिका, नीम, कदम्ब, बेत, आदि वनस्पतियों का वर्णन प्राप्त होता है।[28] आयुर्वेदविज्ञान का वर्णन युद्ध का काण्ड में प्राप्त होता है। इन्द्रजीत के ब्रह्मास्त्र से मूर्च्छित होने पर वैद्य सुषेण ने हनुमान को बताया कि हिमालय पर्वत पर, ऋषभ और कैलाश शिखर के मध्य एक शिखर मृतसञ्जीवनी, विशल्यकरणी, सुवर्णकारी, संघानी आदि ओषधियों से युक्त है ।[29] तदुपरान्त हनुमान जी के द्वारा लायी हुई औषधि सूंघते ही लक्ष्मण नीरोग हो गये ।

इस प्रकार संस्कृत साहित्य में अगाध विज्ञान, पर्यावरण, मानवमूल्य, आदर्श, राष्ट्रप्रेम, विश्वबन्धुत्व, नारीचेतना, धर्मशास्त्र, सबकुछ सन्निहित है । इस लेख में कुछ उदाहरण प्रस्तुत किये गये हैं, क्योंकि काव्य के पक्षों के परिगणन मात्र से पुस्तक का कलेवर हो जाता है और यह व्यापकता संस्कृत काव्यों की महनीयता को दर्शाती है । इन सबके ज्ञात के पश्चात् यह कहने का अवकाश शेष नहीं रहता कि इसकी प्रासंगिकता क्या है? क्योंकि इसके सभी पक्ष प्रासंगिक हैं । जितना महत्त्व लेखन काल में था, उतना ही आज भी दृष्टिगत होता है ।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची -

1. संस्कृत साहित्य का अभिनव इतिहास, राधावल्लभ त्रिपाठी, विश्वविद्यालय प्रकाशन वाराणसी, तृतीय संस्करण, 2010.
2. स्वप्नवासवदत्तम्, व्याख्याकार श्रीनारायण खिस्ते, शारदा संस्कृत संस्थान वाराणसी 2005.
3. संस्कृत में विज्ञान एवं वैज्ञानिक तत्त्व, सम्पादक हरिदत्त शर्मा, संस्कृत विभाग इलाहाबाद वि.वि 2006.

[26] याज्ञवल्क्यस्मृति,

[27] मेघदूत

[28] अयोध्याकाण्ड ९४ सर्ग ८,९,१० श्लोक

[29] युद्धकाण्ड ६७सर्ग६१ श्लोक

4. मृच्छकटिकम्, व्याख्याकार जगदीशचन्द्र मिश्र, चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान वाराणसी 2012.
5. याज्ञवल्क्यस्मृति, व्याख्याकार डा. गंगासागर राय, चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान वाराणसी पुनर्मुद्रित 2015.
6. वाल्मीकिरामायण, गीताप्रेस गोरखपुर 2008.
7. हितोपदेश, चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान वाराणसी 2002.
8. रघुवंश, व्याख्याकार श्रीकृष्णमणि त्रिपाठी, चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान वाराणसी 2014.
9. भागवतपुराण, गीताप्रेस गोरखपुर, 2006.
10. नीतिशतक, व्याख्याकार नरेश झा, चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान वाराणसी, 2014.
11. नाट्यशास्त्र, व्याख्याकार, ब्रजमोहन चतुर्वेदी, चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान वाराणसी 2014.
12. अभिज्ञान शाकुन्तल, प्रकाशन केन्द्र लखनऊ, व्याख्याकार ; तारिणीश झा, 2000.
13. उत्तररामचरितम् : व्याख्याकार, रमाकान्त त्रिपाठी, चौखम्भा संस्कृत प्रतिष्ठान वाराणसी 2010.